धर्म जड़ता नहीं गतिशीलता है

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जड़ पदार्थ में हलन–चलन नहीं होता। जैसे पत्थर लकड़ी या अन्य निर्जीव पदार्थ एक जगह रखे जाते हैं तो उसमें गति नहीं होती है जड़ पदार्थ चेतन भाव से रहित होता है इसलिए उसे जड़ कहा जाता है। वस्तु के हलन–चलन को गतिशीलता कहा जाता है। धर्म आत्मा का लक्षण है, गुण है। जो धारण करता है या धारण करने की शक्ति जिसमें होती है वह धर्म है। गुणों का आचरण में आना आवश्यक है। वस्तु स्वभावो धर्मः अर्थात वस्तु का अपना स्वभाव ही धर्म कहलाता है। अग्नि का स्वभाव ताप पैदा करना है, जल का स्वभाव शीतलता पैदा करना है। नीम का स्वभाव कड़वापन है इसे दूर नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार संसार की जितनी वस्तुएं हैं उनका अपना–अपना गुणधर्म होता है। धर्म आत्म शुद्धि का साधन है। आत्मा की शुद्धिकरण की प्रक्रिया धर्म है। नैतिकता से जीवनचर्या को चलाने के लिए गतीशीलता की आवश्यकता होती है। परोपकार, सत्संगति, सेवाभाव गतिशीलता है। रचनात्मक कार्य गतीशीलता है। गतीशीलता विकास का दूसरा नाम है। प्रमोद भाव को धारण करना एक अच्छा गुण है। गुणों को किसी से भी ग्रहण कर लेना चाहिए। गुण जीवन को लाभ पहुंचाते हैं1 समस को व्यर्थ नहीं गवाना चाहिए। समय के मूल्य को समझकर आगे बढ़ना चाहिए। भाव क्रिया करनी चाहिए। जो जिस कर्म में लगा है उसे उस कार्य को अनुशासन से करना चाहिए। अच्छाई गुण धर्म है। नकारात्मक विचार अधर्म है। नदी का पानी बहता रहता है यह गतिशीलता है। व्यक्ति के जीवन में नई–नई बातें, नए–नए विचारों का आना गतिशीलता है। गतीशीलता के लिए चिंतन मनन और निदिध्यासन की आवश्यकता होती है। जीवन में आगे बढ़ने के लिए एक समय–सारणी बनानी पड़ती है और उसी के अनुसार कार्य करना पड़ता है। कार्य की समय–समय पर समीक्षा होनी चाहिए तभी कोई कार्य समय से पूर्व सम्पन्न हो सकता है मात्र चिंतन करने से गतिशीलता नहीं आती। चिंतन को कार्य रूप में परिणत करना

आवश्यक है। धर्म कहता है कि किसी का बुरा मत करो, किसी का बुरा मत सुनो और किसी का बुरा मत देखो। यदि गलती हो गयी है तो पश्चाताप करो यह शिक्षा हमें धर्म देता है। हम उपवास रखते हैं, पूजा–पाठ करते हैं, जीवन को नियमित एवं संयमित करते हैं यही गतीशीलता है। योग से स्वास्थ्य लाभ हो जाता है। शरीर की जकड़न और थकान दूर हो जाता है। कायोत्सर्ग से शरीर शिथिल हो जाता है। शरीर के प्रत्येक अवयव सक्रिय हो जाते हैं। आत्म चिंतन करना चाहिए कि मैं कौन हूं? कहॉ से आया हूं और कहां जाऊंगा? यह चिंतन भी गतिशीलता है। आत्मा के बारे में चिंतन करना, आत्म निरिक्षण करना गतिशीलता है।

धर्म बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत भावों की शुद्धता, मन की निर्मलता और सात्विक विचार का अधिक महत्व है। धर्म मूलतः किसी वस्तु का सहज गुण है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ है उन सबका स्वाभाविक धर्म होता है। जब पदार्थों में विकृति उत्पन्न की जाती है तो उनके गुण धर्म भी बदल जाते हैं। आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसमें किसी प्रकार की विकृति नहीं आती है। यह अपने स्वरूप में चैतन्य युक्त है। शेष जितने भी पदार्थ हैं वे भौतिक तत्व हैं। उन पदार्थों में परिवर्तन, परिवर्धन होता रहता है। आत्मा और जड़ का जब संयोग होता है तो जड़ पदार्थ भी आत्मवत प्रतीत होने लगता है। शरीर जड़ है और आत्मा चेतन। शरीर से जब आत्मा का संयोग होता है तो जड़ शरीर भी आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। शरीर से अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य किये जाते हैं। मूलतः आत्मा के शुद्धि और अशुद्धि का कोई प्रश्न नहीं है। शरीर में शुद्धता और अशुद्धता देखी जाती है। यदि मानव अच्छा कर्म करता है तो पुण्यलोक की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कार्य करता है तो उसे नरक की प्राप्ति होती है। इसी को ध्यान में रखकर यह बात कही गयी है कि धर्म आत्मा को शुद्ध करता है। आत्मा को न तो आंखों से देखा जा सकता है, न वाणी से कहा जा सकता है, न तो अन्य इन्द्रियों से उसे जाना जा सकता है, न तपस्या और कर्म से ही उसे जाना जा सकता है। जिसके द्वारा सारी ज्ञानेन्द्रियां अपने–अपने विषय का ज्ञान कराती हैं उसे किस साधन से जाना जाय। इसलिये कहा गया है कि 'ज्ञानप्रसादेन तं पश्यते' अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही उसे जाना जा सकता है। जप, तप निखिलकर्मानुष्ठान ये सारे साधन आत्मविषयक आचार

में परिगणित हैं, किन्तु ये केवल चित्त शुद्धि तक ही सीमित हैं। शुद्ध चित्त में ज्ञान का प्राकट्य उसी प्रकार होता है जैसे स्वच्छ कांच में प्रति बिम्बोपलब्धि होती है।

धर्म मानव को जोड़ता है तोड़ता नहीं। धर्म की जड़ गहरी होती है। जो परिवार धर्म से जुड़ा होता है वह हरा–भरा रहता है। जो व्यक्ति धार्मिक दृष्टि से कार्य करता है उसका परिवार सम्पन्न होता है। धर्म में आडम्बर नहीं होना चाहिए। धर्म को उत्कृष्ट मंगल कहा गया है। मानव का जीवन आडम्बर हीन होना चाहिए। धर्म सबका कल्याण करता है। इसलिए कहा गया है– अहिंसा परमोधर्मः अर्थात् अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। धर्म मानव का आन्तरिक गुण है। मानव को धर्म का पालन करते हुए संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिए। जितनी आवश्यकता है उतना ही उपयोग करना चाहिए। किसी के अस्तित्व के संकट नहीं बनना चाहिए। धर्म का आन्तरिक संदेश तप है। तप बाह्य और आन्तरिक दो प्रकार का है। बाहर का अंकुश और भीतर का अंकुश धर्म है। भीतर का अंकुश आन्तरिक शोधन करता है। धर्म का मूलमन्त्र आन्तरिक शुद्धता है। आन्तरिक शुद्धता आत्मपवित्रता है। आत्मा का चिन्तन करना, आत्मा का मनन करना और आत्मा का निदिध्यासन करना चाहिए। इन्द्रिय नियन्त्रण करना धर्म पालन के लिए अनिवार्य है। इन्द्रिय नियन्त्रण से मानव संस्कारित बनता है। इससे आन्तरिक शुद्धता आती है। जितने भी गतिशील पदार्थ हैं उसमें चेतना रहती हैं। चेतना के कारण उनका विकास होता है। जड़ पदार्थ गतिहीन होता है। धर्म सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।